REVIEW OF RESEARCH

समाज परिवर्तन आंदोलन के मुखपत्रों के संपादक मा. कांशीराम

डॉ. पी. एस. चंगोले

वाणिज्य विभाग प्रमुख, धनवटे नॅशनल कॉलेज, नागपूर.

ISSN: 2249-894X
IMPACT FACTOR : 5.7631(UIF)
UGC APPROVED JOURNAL NO. 48514
VOLUME - 8 | ISSUE - 8 | MAY - 2019

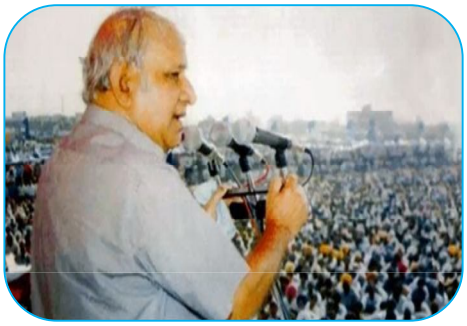

प्रस्तावना :

कांशीराम ने जब से फुले–शाहू–पेरियार–अम्बेडकर के विचारधारा के आधार पर आंदोलन का नेतृत्व स्विकार किया तब से परितर्वनवादी विचारधारा का प्रचार करने की अपनी योजना बना ली थी। उसके अंतर्गत पत्र–पत्रिकांओ का नियमित प्रकाशन करने की योजना सामिल थी। पहले वे आप्रेस्ड इंडियन नामक अखबार निकालते थे। बाद में उन्होंने बहुजन संगठन साप्ताहिक निकालना शुरू किया। यह हिंदी और अंग्रेजी दोनों में निकलता था। उसके बाद दैनिक बहुजन टाईम्स हिंदी और अंग्रेजी में शुरू किये थे। प्रकाशन ब्रांच बसपा का एक मुख्य अंग है। इसका मुख्य कार्यालय दिल्ली में है जहां से अंग्रेजी और हिंदी में प्रकाशन होता था। अन्य भाषाओं के प्रकाशन का दयित्व प्रायः भाषावार प्रान्तों की शाखाओं के पास है। बुद्धिजीवी सक्रिय कार्यकर्ताओं, कम से कम स्नातक योग्यता वाले कार्यकर्ताओं और प्रायः एक से अधिक भाषाओं का ज्ञान रखने वाले कार्यकर्ताओं को प्रकाशन संच से जोड़ा गया था। मुख्य सम्पादक कांशीराम थे। एक सम्पादकीय मंडल था, जो सम्पादकीय लिखने के साथ विषय वस्तु का निर्धारण भी करता था। क्षेत्रों में समाचारों के संकलन के लिए इसके अपने पत्रकार और छायाकार है। आमतौर पर ये समाचार कांशीराम के भाषण, बसपा तथा उसके अन्य संगठनों से सम्बधों, तथ्यों, बैठकों, इत्यादी तथा बहुजन वर्ग की उपलब्धियों तथा उसके उत्पीड़न से सम्बन्धित होते थे। कांशी राम के साथ कुछ पत्रकार और छायाकार बराबर रहते थे जो उनके सम्मेलनों, भाषणों का संकलन और छायांकन करते रहते थे। अन्य पत्रों के उन समाचारों को भी बहुजन संगठक ग्रहण कर लेता था जो बहुजन–शोषितों के उत्पीड़न या सवर्ण अत्याचारों से सम्बन्धित होते थे।

इस साप्तिांहक को मण्डल कार्यालयों तथा जिला कार्यालयों पर भेजा जाता रहा। वहां से अन्य स्थानों को वितरण होता था पत्र डाक द्वारा सीधे मंगाया जा सकता था। आंदोलन से सम्बन्धित वे ही सदस्य पत्र प्राप्त करने के अधिकारी होते थें जिन्होंने पत्र सदस्यता शुल्क जमा किया होता है। पत्र आम बाजार के लिए वितरित नहीं किया जाता था।

समाचार पत्र संघर्ष का हथियार

कांशीराम का कहना था कि भारत में **समाचार पत्रों का जन्म और विकास ही संघर्ष के हथियार के रूप में हुआ है** जिस आन्दोलन के पास अपना समाचार पत्र नहीं होता, वह सफल नहीं हो पाता। उनका कहना है कि हम अपने समाचार पत्र द्वारा दलित–शोषित जनता के सामने देश और व्यवस्था की सच्ची तस्वीर पेश करते हैं जबकि ब्राम्हणवादी पत्र बहुजनों को गुमराह करते है।[1] बहुजन संगठक अपने बारे में ये बातें कहता है–**यह अनुसूचित जाति, जनजाति, अन्य पिछड़ा वर्ग एवं अल्पसंख्यक समुदाय की समस्याओं को उजागर करता तथा समाधान बताता है; यह समता, स्वतन्त्रता, बन्धुत्व एवं न्याय पर आधारित सामाजिक व्यवस्था के निर्माण में व्यस्त है; इतिहास एवं खोजपूर्ण तथ्यों द्वारा बहुजन–शोषित समाज में निर्भीकतापूर्वक समता, साहस, स्वाभिमान, सहचर्य, सदगुण एवं सदभाव भरता है;**

बहुजन–शोषित समाज का उनके, अधिकारों एवं कर्तव्यों के प्रति सचेत कर राजनीतिक चेतना पैदा करता है; बहुजन समाज के प्रति रचे जाने वाले षड़यन्त्रों का भण्डाफोड़ और बचाव का उपाय बताता है; बहुजन–शोषित समाज को मुक्ति दिलाने वाले संतों, महात्माओं और महापुरुषों के संस्मरण छाप कर उनकी कृतियों का स्मरण करता है; बहुजन समाज का सम्पूर्ण पथ प्रदर्शन करता है; रूढ़ियों एवं पाखण्डों, छल, दम्भ, द्वेषों का छिद्रान्वेषण तथा यथास्थिति का घोर विरोध एवं प्रगतिशील विचारों का प्रतिपादन करता है; लोकतंत्र का प्रचारक है; धर्मनिरपेक्षता का प्रबल प्रतिपादन करता है; यह समाचार पत्र नहीं, विचार पत्र है; बहरे गूगों की आवाज है; महिला मुक्ति का उद्घोषक है; वर्तमान आर्य–अनार्य संघर्ष में अनार्यों का शक्तिशाली अस्त्र है; मान्यवर कांशी राम का संदेश वाहक और आम्बेडकर विचार का प्रचारक, प्रसारक, प्रशिक्षक और अनुपालक है।[2]

प्राचीन काल में जिन्हें खलनायक या राक्षस कहा जाता था उनके खलनायकत्व और राक्षसत्व को बसपा के साहित्य में बदल दिया गया है। बसपा की दृष्टि में प्राचीन काल का इतिहास यक्ष संस्कृति (आर्य संस्कृति) एवं रक्ष संस्कृति (अनार्य संस्कृति) के संघर्ष का इतिहास है। वाल्मीकि रामायण में यक्ष संस्कृति एवं रक्ष संस्कृति के बीच संघर्ष का उल्लेख मिलता है। रक्ष संस्कृति के लोग भारत के मूल निवासी थे, जो कमजोरों की रक्षा करना कर्तव्य समझते थे, वे आर्यों के यज्ञ का विरोध करते थे। यज्ञ में नष्ट होने ाले अन्न, घी व जीवों की बलि का विरोध करते थ। वर्ण व्यवस्था के रक्षक क्षत्रियों एवं राक्षसों में भयानक संघर्ष हुए।

राक्षस का शाब्दिक अर्थ है – वे महाबली जो भारत के मूल निवासी थे। महाराष्ट्र के बहुजन साहित्य और इसमें एक मूल अंतर यह है कि उसके लेखन में प्रधानतः बहुजन–शोषितों की राजनीतिक व्यवस्था में परिवर्तन व उत्थान के लिए राजनीतिक शक्ति पर नियंत्रा की अपील की जाती है ताकि जातिनिष्ठ समाज व्यवस्था को समाप्त किया जा सके। जबकि महाराष्ट्र का बहुजन साहित्य इस लक्ष्य को कला और साहित्य से प्राप्त करना चाहता है। **वहां सामाजिक परिवर्तन मानसिक परिवर्तन हो जाता है।**[3]

अपने जनाधार से कांशीराम का निरंतर घनिष्ट संपर्क

1988 के इलाहाबाद उपचुनाव से लेकर 1991 के चुनाव तक कांशी राम दो प्रधानमंत्री देख चुके थे। 1991 के चुनाव की नौबत आने से पहले ही कांशीराम ने ऊंचे राजनीतिक हलकों में एक चतुर राजनेता की छवि बना ली थी। आम तौर पर पार्टियों उने घबराने लगी थी क्योंकि कांशीराम की राजनीति कभी भी उनका बनता हुआ खेल बिगाड़ सकती थी। राष्ट्रीय राजनीतिक परिस्थिति निहायत अस्थिर थी। आम जनता बेचैनी से भरी हुई थी। ऐसे समय में कांशी राम ने दो पहलुओं पर जोर दिया। पहला, उन्होंने अपने जनाधार से घनिष्ठ संपर्क निरंतर जीवंत बनाए रखा। प्रति दिन 16 से 18 घंटे श्रम करके उन्होंने सुनिश्चित किया कि वे हर वर्ष कम से कम दो बार अपने आधार क्षेत्र में फैले कार्यकर्ताओं से जरूर मिलेंगे। इसके लिए उन्होंने निरंतर यात्रारत रहने का संकल्प किया। वे दो के हर जिले में सड़क के रास्ते पहुंचे। दूसरे, विभिन्न पार्टियों ओर नेताओं के बारे में आलोचनात्मक बयान जारी करके उन्होंने बसपा की स्वतंत्रता कायम रखी। उस समय मंडल आयोग की रपट लागू करके पिछड़ों के नायक बनने की विश्वनाथ प्रताप सिंह की कोशिश जारी थी और राम रथ यात्रा करके लालकृष्ण अडवाणी भाजपा को काँग्रेस के बाद सबसे बड़ी पार्टी के रूप में स्थापित करने ही वाले थे। वे सामाजिक राजनीतिक ध्रुवीकरण के दिन थे। उन्हीं दिनों सेमिनार के लिए रुचिरा गुप्ता ने कांशीराम से एक महत्वपूर्ण इंटरव्यू लिया। इस इंटरव्यू से उस जमाने में कांशीराम की राजनीतिक समझ ओर उसका राष्ट्रीय परिप्रेक्ष्य उभर कर आया–

"हमारी राजनीति अभी भी पूरी तरह ध्रुवीकृत नहीं हुई है। शुरुआत हो गई है लेकिन प्रक्रिया संपूर्ण होनी बाकी है। जनता दल खत्म नहीं हुआ है पर उसमें टूट जारी है। विभिन्न विचारधाराओं की विविध पार्टियां हैं लेकिन स्पष्ट रूप से मध्यमार्गी और दक्षिणपंथी विचारधाराएं उभर रही है।..... भाजपा की ताकत को आप बढ़ा–चढ़ा कर आंक रही हैं। यह पार्टी अपने राजनीतिक जीवन के शिखर पर पहुंच चुकी है। अब तो उसे नीचे ही जाना है।.....मंदिर और मंडल जैसे जजबाती मुद्दे एक बार फल देते है। उनसे चुनावी फायदा एक बार ही उठाया जा सकता है। फिर उनका आकर्षण खत्म हो जाता है क्योंकि वे हमारी रोजमर्रा की जिंदगी को प्रभावित नहीं करते।..... भाजपा इसी समस्या का सामना कर रही है कि मंदिर मुद्दे को कैसे जीवित रखा जाए। हाल के उपचुनावों में भाजपा ने जो कुछ सीटें जीती हैं–वे सरकार की ताकत के दम पर जीती हैं।..... अब भाजपा बिना

उत्तरदायित्व के सत्तासीन होने का मजा नहीं ले सकती। अब वह जो करेगी, उसकी जिम्मेदारी उसे लेनी होगी तथा उसका आकलन उसके कामों से होगा इसलिए वे काफी दिक्कत में हैं।..... विरोधाभास यह है कि मुसलमानों और वीपी सिंह ने भाजपा को वैधता प्रदान की है। मुसलमान कॉंग्रेस से नाराज थे। इसका फायदा उठा कर वीपी सिंह ने उन्हें अपने साथ कर लिया और कॉंग्रेस को तोड़ने की कोशिश की। उन्होंने मुसलमानों को यह भी समझा लिया कि भाजपा की मदद से ही ऐसा किया जा सकता है। नतीजतन भाजपा की सीटें लोकसभा में 2 से बढ कर 88 हो गई। मुसलिम समर्थन से भाजपा को वैधता मिली और 1991 में वह अपनी दम पर खड़ी होने लायक बन गई।.... बसपा की वजह से किसी पार्ट को पूर्ण बहुमत नहीं मिल पाया.... कॉंग्रेस 71 सीटें हमारी वजह से हारी..... ।[4]

कडवी सच्चाई के बयान

जनता दल का जुलम, ज्यादती और दादागिरी में बड़ा भारी हाथ है। असल में वह तो इसमें नंबर एक है। वह कॉंग्रेस जितना ही जातिवादी है लेकिन सामंती तत्वों की संख्या उसमें ज्यादा है–वे तत्व कहीं ज्यादा गंवार और अशिष्ट हैं।[24]..... कॉंग्रेस पर ब्राम्हणवादी चौधराहट है। जनता दल पर ब्राम्हणवाद और सामंतवाद दोनों का अधिपत्य है। अगर कॉंग्रेस भ्रष्ट है तो जनता दल महाभ्रष्ट है।[25].....स्वच्छ राजनीति और नई राजनीतिक संस्कृति की शुरुआत करने का दावा करने वाले वीपी सिंह ने इलाहाबाद चुनाव जीतने के लिए सारे सिद्धांतों को ताक पर रख दिया। नैतिक मूल्यों की बात करना और शहाबुद्दीन, बुखारी, संघ और बजरंग दल से गठजोड करना–साथ–साथ कैसे हो सकता है।[26]..... वीपी सिंह अपनी असली पहचान छिपा नहीं सकते।आदमी को उसकी सोहबत से जाना जाता है। उनके सबसे उत्सुक समर्थक भाजपा और संघ है।[27] वीपी सिंह बातें अच्छी करते है लेकिन काम नहीं करते।[5] .... जनता दल के नेता को जिम्मेदारी के साथ एक मजबूत और दृढ़ कप्तान की तरह काम करना चाहिए। लेकिन वीपी सिंह पैबंद लगाने वाले रेफ्री की तरह व्यवहार कर रहे है। इससे उनकी बड़ी बुरी तस्वीर उभरती है।[6] ....हम वीपी सिंह का साथ क्यों दें?.... मुरादाबाद के दंगों को लीजिए जो उनके वक्त में हुए थे। दो हजार मुसलमान मारे गए लेकिन जिस सुअर की वजह से दंगा हुआ वह अभी भी जिंदा है..... उनके खिलाफ दो चीजें जाती है। पहली, वे 25 साल तक कॉंग्रेस में रहे और उप्र में उनके मुख्यमंत्रित्व की पिछड़े वर्गों के संबंध में काफी चर्चा हो चुकी है। आज वे बदलने की कोशिश कर रहे हैं लेकिन उनके साथी काफी कुख्यात हैं। वीसी शुक्ल, अरूण नेहरू.... ये सब भ्रष्ट है। फिर वीपी सिंह ठाकुर हैं। आज ठाकुर उनके लिए जोश में भरे हुए है लेकिन अगर वीपी सिंह ने समता और भाई–चारे के बारे में बोला तो ठाकुर उन्हें छोड़ जाएंगे। वीपी सिंह नंबर एक के पाखंडी है।[7] वीपी सिंह ने घोडे के आगे गाड़ी रखने की कोशिश की है यानी रिजर्वेशन का नौकरियों के सिलसिले में वायदा किया है लेकिन शिक्षा के बारे में उन्होंने कुछ भी घोषित नहीं किया।[8] ..... कई सालों से मैं मंडल आयोग की सिफारिशें लागू करवाने के लिए संघर्ष कर रहा था। आज भी मैं इस संघर्ष को रोक नहीं सकता क्योंकि इस घोषणा के जरिए वीपी सिंह ने इन लोगों को धोखा देने की कोशिश की है।.... यह रोटी और रोजी का सवाल नहीं है। हम इस देश की सरकार में हिस्सेदारी चाहते हैं।... शिक्षा के क्षेत्र में–मेडीकल, इंजीनिरिंग, कृषि और वाणिज्य में आरक्षण का क्या हुआ।[9]... चंद्रशेखर कठपुतली हैं, इससे मैं खुश हूं। कठपुतली हुए बिना शेखर प्रधानमंत्री बन ही नहीं सकते थे। लोगों को वीपी सिंह से काफी उम्मीदें थीं लेकिन चंद्रशेखर से उन्हें कोई उम्मीद नहीं है।[10].....हम अडवाणी की यात्रा के खिलाफ जमकर लड़े। मैंने वीपी सिंह को इसे इजाजत न देने की चेतावनी दी और मद्रास की राष्ट्रीय एकता परिषद की बैठक में यह रवैया अपनाया। हमने वीपी सिंह से कहा कि या तो वे यात्रा के विनाशकारी नतीजों के बारे में आडवाणी को समझाएं या फिर प्रशासनिक कदम उठाएं। 17 अक्तुबर 1990 को रथ दिल्ली पहुंचा और मैंने फिर वीपी सिंह से कोई कदम उठाने के लिए कहा क्योंकि आडवाणी खुलेआम कह रहे थे कि वे मस्जिद गिराने के लिए अयोध्या जा रहे है। वे जनता को यह अपराध करने के लिए तैयार कर रहे थे। वीपी सिंह ने उन्हें यह क्यों करने दिया?.... वे पूरी तरह आडवाणी से मिले हुए थे। **उनका हाथकंडा था कि तुम 'राम' के साथ जाओ ताकि 'रहीम' अपने आप मेरे पास चला आए–रहीम और मंडल।** यह वीपी सिंह और

आडवाणी का मिला जुला षडयंत्र था और यह बात मैंने साफ–साफ वीपी सिंह से कही। जब मैंने कहा तो उन्होंने इसका खंडन किया। तो मैंने पूछा कि जब हम इतने चिंतित हैं तो वे क्यों इतने चैन से हैं?.... मैं उनके रवैए से चकित था और तब मैंने तय किया कि वे जरूर आडवाणी से मिले हुए थे।[11]

कांशीराम ने अयोध्या के मसले पर 'अदालती निर्णय' को समर्थन देना स्वीकार किया, यद्यपि उनकी प्राथमिकता 'राजनीतिक निर्णय' की थी। पंजाब समस्या पर वे आतंकवादियों से मिजोरम और असम की शैली में ही बातचीत करने के पक्ष में थे।[12]

"हमें भाजपा पसंद है। आडवाणी तो एक नाग है। मुझे अपने लोगों को भाजपा से सतर्क रहने के लिए कहने की जरूरत ही नहीं है। मेरी पार्टी में हर व्यक्ति इस नकाबपोश कोबरा को पहचानता है।[13] ..... भाजपा यथास्थिति को बनाए रखने की समर्थक है जबकि हम उसमें परिवर्तन चाहते हैं।[14].... हम निचली जातियों के वोट काटते हैं, वे ऊंची जातियों कें। हम उनसे नफरत करते हैं, वे हमसे।[15]

1988 से 91 के बीच में कांशीराम राजनीतिक गठजोड़ करने के खिलाफ थे। उनकी मान्यता थी कि गठजोड़ तो इम्तहानों में नकल मारने जैसा है यानी दूसरी कापी में से टीपना। वे कहते थे कि गठजोड़ से हो सकता है कि हमारी स्थिति सुधर जाए पर 'वे' तो और भी मजबूत हो जाएंगे।[16] समाचार माध्यमों के बारे में बसपा प्रमुख का ख्याल था कि उन्हें मनी, माफिया और मीडिया की तीन बुराइयों से लड़ना है और **वे मीडिया को अपने 'जनसंपर्क अभियान' से निरस्त कर देंगें।[17]**

ओबीसी के सामाजिक तथा राजनीतिक लोकतंत्र को बढावा

1985 से ही बामसेफ–डी.एस. – 4 के माध्यम से ही मंडल आयोग के समर्थन मे कांशीरामने अभियान गतिमान कर दिया था। उससे ओ.बी.सी. जानकार होने कि प्रक्रिया तेज हुई और कॉग्रेस–भाजपा से ओ.बी.सी. सावधान होने लगे। उसका राजनीतिक लाभ उठाने के लिये वी. पी. सिंग सरकारने मंडल आयोग की आधी–अधुरी शिफारीसे स्विकृत करणे की घोषणा कर दी तथा सुप्रिम कोर्ट मे यह फैसले के खिलाफ याचिका दायर हो गई। बदलते राजनीतिक माहौल में कांशीराम की रणनीति इस प्रकार रही।

1) राजनीति में ऊपर से हस्तक्षेप करने के लिए प्रधान मंत्री स्तर के नेताओं के खिलाफ प्रतीकात्मक ढंग से चुनाव में उतरना और इस तरह एक राष्ट्रीय छवि का निर्माण करना।

2) अपने आधार क्षेत्र (जिनमें मुख्यतः बहुजन, कुछ–कुछ अतिपिछड़े और गरीब मुसलमान शमिल थे) के साथ निरंतर संपर्क में रहना। उन्हें राजनीतिक रूप से सचेत और सक्रिय बनाए रखने के लिए निरंतर प्रचार यात्राएं, धरने और प्रदर्शन इत्यादी चलाते रहना।

3) किसी भी तरह के खुले गठजोड़ अथवा सीटों के तालमेल से इंकार करना और इस तरह बसपा के आंदोलन की स्वतंत्र और आत्मनिर्भर शक्ति को विकसित करते रहना।

इस प्रकार 1991 तक कांशी राम गरीब जनता के बीच जम कर काम करने और अपनी राष्ट्रीय पहलकदमियों के बीच उचित संतुलन कायम रख पाए। लेकिन 1989 और 1991 के बीच देश का राजनीतिक माहौल काफी बदल गया। मंडल रपेट लागू होने और उसकी प्रतिक्रिया में आडवाणी की राम रथ यात्रा ने सामाजिक–राजनीतिक ध्रुवीकरा की शुरुवात कर दी। यहां उल्लेखनीय बात यह थी कि हिंदुत्व के आंदोलन से कांशीराम को उतनी दिक्कत नहीं थी जितनी मंडल रपट के राजनीतिक प्रभावों से थी। यद्यपि, मंडल रपट लागू कर दी, उसके विरोध में आरक्षण विरोधी सड़कों पर उमड़ पड़े और आत्मदाह होने लगे–तो कांशीराम को लगा कि पुरानी चाल के बहुजन नेता नहीं बल्कि वीपी सिंह और जनता दल ही उनके प्रमुख प्रतिद्वंद्वी बनकर उभरे हैं।

उन्होंने कहा, "कुछ और लोग भी हैं जो हमारी भाषा बोल रहे हैं।" वीपी सिंह का जिक्र करते हुए कांशी राम ने जानकारी दी कि वे (वीपी सिंह) खुद को सामाजिक रूपांतरण के विरोधियों से घिरा हुआ महसूस करते हैं इसलिए उनसे (बसपा) समझौता करना चाहते हैं।[18] वीपी सिह के इस कथित प्रस्ताव को उस समय मानने का सवाल ही नहीं उठता था क्योंकि एक चुनावी मुद्दे के रूप में कांशीराम मंडल आयोग के इस्तेमाल के प्रति सशंकित हो कर किसी भी कीमत पर जनता दल को इसका

फायदा उठाने से रोकने पर आमादा थे। इसलिए उन्होंने जनता दल से समझौता करने से लगातार इंकार किया और जनता दल छोड़ कर चंद्रशेखर के साथ मिल कर समाजवादी जनता पार्टी बनाने वाले मुलायम सिंह यादव और देवीलाल के प्रति हमदर्दी का रुख अख्तियार किया। उन दिनों देवी लाल और मुलायम सिंह के बारे में कांशीराम के वक्तव्य उनके इस रवैए को साफ तौर पर बताते थें–

"देवी लाल प्रधान मंत्री बनना चाहते हैं। वे लाल किले की प्राचर से बोलना चाहते हैं। लेकिन जाट तो देश के 450 जिलों में से केवल 20 जिलों में ही है। केवल जाट समर्थन से वे प्रधान मंत्री नहीं बन सकते। वे अपना समर्थन आधार बढ़ाना चाहते हैं इसलिए उन्होंने कमजोर वर्गो और किसानों के भाईचारे की, जाट और जाटवों के भाईचारे की धारणा पेश की है। जाटों ने ही पहली बार ब्राम्हणवाद के खिलाफ बगावत की थी। पाकिस्तान जिन्ना ने नहीं बनाया लेकिन 1880 के बाद मुसलमान बने जाटों की विशाल संख्या ने बनाया। पंजाब की बहुसंख्य जाट ही है और वह खालिस्तान की मांग कर रही है। जाटव भी ब्राम्हणवाद के खिलाफ विद्रोहरत है। ब्राम्हणवादी दमन के खिलाफ दोनों एक हो जाएं इससे ज्यादा स्वाभाविक और क्या हो सकता है।..... मैंने उनसे (मुलायम सिंह से) शुरूआत में ही कह दिया कि मैं कोई चुनावी तालमेल नहीं चाहता। लेकिन मुझे लालच देने के लिए वे अपनी पेशकश बढ़ाते चले गए, यहां तक कि मैं लाजवाब हो गया। श्री यादव बेवकूफ नहीं है। वे जानते है कि अगर बसपा और सजपा में गठजोड़ हो गया तो हम विधान सभा और लोक सभा चुनाव जीत सकते है।[18]

लोकतंत्र का सम्मान – पंजाब चुनाव मे ब.स.पा. की राष्ट्रीय भूमिका

1992 की शुरूआत में कांशीराम को यह साबित करने का मौका मिला कि उनकी पार्टी किसी दल से कम देशभक्त नहीं है और राष्ट्रीय एकता–अखंडता में विश्वास करती है। नरसिंह राव सरकार ने आतंकवाद पीडित पंजाब में बहुप्रतीक्षित चुनाव घोषित किए जिसका अकालियों के सभी धड़ों (काबुल धड़े को छोड़ कर) ने यह कह कर बायकाट किया कि अभी स्थिति चुनाव के लायक नहीं है। अकालियों की मांग थी कि पहले चंडीगढ़ पंजाब को दिया जाए, नदी जल के बंटवारे का विवाद सुलझाया जाए और 1984 के सिख हत्याकांड के दाषियों को सजा दी जाए। राव सरकार ने चुनाव की अधिसूचना जारी करवाने में जान बूझ कर देर की ताकि वह कोई एकमुश्त एलान करके अकालियों को मना सके। लेकिन राजस्थान के मुख्य मंत्री भैरोसिंह शेखावत और हरियाणा के मुख्य मंत्री भजन लाल ने पूरी ताकत लगा कर इस संभावना को निरस्त कर दिया। बसपा ने पंजाब चुनाव में हिस्सा लेने का निर्णय किया।[44] परिस्थितियां निश्चित रूप से अनुकूल नहीं थी। सिख आतंकवादियों का मुख्य आधार ताकतवर जाट किसान थे और कांशीराम का आधार मजहबी सिख थे। मजहबी सिख पंजाब की आर्थिक–सामाजिक परिस्थिति में इतने दबे रहते थे कि जाट सिखों के सामने सिर उठाना उनके लिए मुश्किल था। 1991 खत्म होते–होते आतंकवाद के शिकारों और पुलिस द्वारा मारे गए लोगों की संख्या बढ़ कर 35,000 तक पहुंच चुकी थी। इसमें करीब पांच जार लोगों की जान 1991 में हो गई थी।

इन हालात में चुनाव लड़ कर कांशीराम दो काम कर सकते थे–मजहबी सिखेां को जाट सिखों की धौस से अलग किया जा सकता था और इन वोटों को कॉंग्रेस में जाने से रोका जा सकता था। इस प्रक्रिया में बसपा को पंजाब में अपना आधार और मजबूत करने का मौका तो मिल ही सकता था, साथ ही वह अच्छे राष्ट्रवादी चाल–चलन की सनद भी हासिल कर सकती थी। मुश्किलें दो थीं–पहली, अकाली धड़ों ने बसपा से अकाल तखत के जरिये अपील की कि वह पंजाब चुनाव में भागीदारी न करे और दूसरी, सिख आतंकवादियों ने धमकी दी थी कि वोट डालने जा रहे लोगों को उनकी गोलियों का सामना करना पड़ेगा। कांशीराम और उनके समर्थकों ने दोनों हालतों का दृढ़ता से मुकाबला किया। उन्होंने अकालियों की अपील ठुकरा दी। बसपा कार्यकर्ताओं ने निर्भयता से चुनाव प्रचार अभियान चलाया। **केवल बसपा ही ऐसी पार्टी थी जिसका चुनाव अभियान पंजाब के तत्कालीन हालात से प्रभावित नहीं लग रहा था। बसपा के नीले झण्डे और सफेद रंग के बड़े'–बड़े पोस्टर कांशी राम और चुनाव चिन्ह हाथी की तस्वीर के साथ गांव–गांव में दिखाई दे रहे थे। कांशी राम ने स्वयं पंजाब का जम कर दौरा किया। शहरों की भीड़ भरी सडकों से लेकर गांवो की गलियों तक कांशी राम हर जगह दिखे। इस समय पंजाब के हर संसदीय निर्वाचन क्षेत्र में बसपा के दफ्तर सक्रिय थे। केवल बसपा ने ही खुली जनसभाएं कीं। कॉंग्रेस और भाजपा की**

ज्यादातर जन सभाएं घरों के अहातों के अंदर हो रहीं थी। कई जगह तेा लग रहा था कि बसपा के अलावा कोई पार्टी मैदान में ही नही।

मतदान के दिन जाट सिख वोट डालने नहीं निकले। हिंदुओ ने अधिकाशतः काँग्रेस को वोट दिया। बसपा को पूरे पंजाब में पडे मतों का 15.44 फीसदी मिला और कुल मतों का 3.99 फीसदी मिला। 34 विधान सभा क्षेत्रों में बसपा निकटतम प्रतिद्वंद्वी रही। 39 क्षेत्रों में वह तीसरे नंबर पर रही। बसपा के पांच उम्मीदवारों को पड़ै मतों का **40 से 50** फीसदी तक मिला। 18 क्षेत्रों में यही आंकडा 30 से 40 फीसदी था। यद्यपि, पंजाब के चुनाव विभिन्न अकाली धडों का बहिष्कार के कारण किसी भी तरह से समुचित प्रतिनिधित्व वाले चुनाव नहीं कहे जा सकते थे, लेकिन उनका राजनीतिक महत्व था। **बसपा विधान सभा** में मुख्य **विपक्षी दल बन गई थी।**[19]

पंजाब चुनाव : बी.एस.पी. बनाम बी.एस.एफ.

इस राजनीतिक सफलता की कीमत कई बसपा समर्थकों को अपनी जान देकर चुकानी पड़ी। अगर मुख्य तौर पर बसपा और गौंड़ रूप से माकपा, भाकपा आईपीएफ और अकाली दल (काबुल) न होते तो आतंकवादी पंजाब चुनाव को पुरी तरह मजाक और जनता से कटा हुआ करार दे सकते थे। इसलिए उन्होंने अपनी नाराजगी बसपा पर ही उतारी। चुनाव के तुरंत बाद 12 बसपा समर्थक उनकी गोलियों का निशाना बने। कांशीराम का ख्याल था कि इन हत्याओं में बसपा के विरोध से खुंदक खाई काँग्रेस की शक्तियों का भी हाथ था। उन्होंने आरोप लगाया कि यह चुनाव काँग्रेस द्वारा बड़ै पेमाने पर की गई धांधली का शिकार हुआ है और इसके लिए काँग्रेस ने बीएसएफ ओर सीआरपीएफ सरीखे अर्धसैनिक बलों का जम कर इस्तेमाल किया है। **बसपा ने चुनाव को 'बीएसपी बनाम बीएसएफ' कह कर परिभाषित किया।** वोटरों को उग्रवादियों की हिंसा से बचाने की खातिर उंगली पर लगाई जाने वाली अमिट स्याही का इस्तेमाल न करने के निर्णय के कारण भी काँग्रेस को मतपत्रों पर मुहर ठोकने की सुविधा हुई।

आतंकवाद की धमकियों के आगे नीले झंडे और हाथी की निर्भयता ने सारे देश का ध्यान आकर्षित किया।

कांशीराम का संसद में प्रवेश

1992 के नवंबर में इटावा संसदीय सीट पर उपचुनाव हुआ। कांशीराम ने बसपा उम्मीदवार के रूप में वहां से परचा भरा। मुलायम सिंह यादव ने अपने घरेलू क्षेत्र से निवर्तमान सांसद राम सिंह शाक्य को खड़ा किया। काँगेस और भाजपा के उम्मीदवार भी मैदान में उतरे। काछी (शाक्य), लोधी, यादव और गड़रिया मतदाताओं को मुलायम विभिन्न ढंग से सत्ता में भागीदारी देकर अपनी ओर कर चुके थे। पर इस बार मुलायम सिंह ने शाक्य मतदाताओं को नाराज करने का जोखिम उठाया और उनके समर्थकों ने ऐन मौके पर पिछड़ा वर्ग के वोट कांशीराम की तरफ स्थानांतरित कर दिए। इस तरह बहुजन (मुख्यतः जाटव) और यादव वोटों की एकता पहली बार बनी। मुसलमान भी उसके साथ जुड़ै प्रतिक्रिया में भाजपा और काँग्रेस अंदर ही अंदर एकताबद्ध हो गई। कड़ा संघर्ष हुआ लेकिन कांशीराम 19 हजार वोटों से जीत कर संसद में पहुंच गए। इटावा का यह संसदीय चुनाव कई दृष्टियों से मील का पत्थर साबित हुआ। कांशीराम के लिए आसानी हो गई और वे अपने पार्टीजनों को खुले गठजोड़ के प्रति आश्वस्त कर सके। मुलायम सिंह ने परख लिया कि बसपा के साथ उनके और मुसलमानों के वोट मिल जाने से जो ताकत बनती है उसमें चुनाव जीतन की क्षमता है।

इटावा का चुनाव इस मायने में नमुना बन गया कि पिछड़े और दलित वोट एक–दूसरे के उम्मीदवारों को जिताने के लिए गोलबंद हो सकत है। इटावा में जीत से कांशीराम ने बसपा के असंतुष्टों को भी करारा झटका दिया। राम समुझ वगैरह अलग हो चुके थे पर बसपा में रह गए उनके समर्थक कभी भी विद्रोह का झंडा उठा सकते थे। लेकिन बसपा ने 1992 की शुरूआत में पंजाब चुनावों में अच्छा प्रदर्शन करके और फिर इटावा में जीत कर उनके इरादो को ठंडाकर दिया।

घटनाओं की रफ्तार बहुत तेज थी। काँग्रेस की केंद्र सरकार ने छह सितंबर 1992 को बाबरी मस्जिद से शह पा कर उप्र की भाजपा सरकार ने छह सितंबर 1992 को बाबरी मस्जिद ध्वस्त करवा

दी। सारे देश में सांप्रदाय स्थिती विस्फोटक हो गईं। कल्याण सिंह सरकार बर्खास्त कर दी गई और उत्तर प्रदेश में नए चुनाव अवश्यंभावी हो गए।

हिंदुत्व की शक्तियों का दावा था कि एक बार फिर उनके पक्ष में लहर चल रही है और वे बड़े पैमाने पर जीतेंगी। इस तर्क को आगे बढ़ाते हुए वे कहती थी कि लखनऊ के बाद दिल्ली का नंबर होगा और उनकी जीत से उन धर्मनिरपेक्ष शक्तियों को मुंह की खानी पड़ेगी तो मस्जिद ध्वंस को राष्ट्रदोह के बराबर ठहरा रही थी। कॉंग्रेस उत्तर प्रदेश में बुरी हालत में थी। जनता दल टूट चुका था। मुलायम सिंह यादव ने सजपा से निकल कर अलग समाजवादी पार्टी बना ली थी। अब केवल सपा और बसपा का खुला गठजोड़ ही हिंदुत्व को सत्ता में आने से रोक सकता था।

हिंदुत्वकी आक्रमक बढत रोकने के लिए ऐतिहासिक गठजोड़

1993 में हुआ समाजवादी पार्टी और बसपा का गठजोड़ कई मायनों में ऐतिहासिक था। इसका फौर और चुनावी उद्देश्य हिंदुत्व की तेजी से उभरती हुई बढ़त रोकने से संबंधित था, लेकिन इसमें दूरगामी सामाजिक–राजनीतिक संभावनाएं भी छिपी हुई थी। मुलायम सिंह यादव डॉ. राम मनोहर लोहिया के अनुयायी थे और कांशीराम आंबेडकर के। आजादी के आंदोलन के दौरान और आजादी के बाद लोहिया और आंबेडकर के बीच कई बार सार्थक संवाद के मौके आए थे, लेकिन किसी न किसी वजह से उन्हें किसी ठोस अन्नोन्यक्रिया में विकसीत नहीं किया जा सका था। दरअसल, ये दोनों नेता अपने राजनीतिक जीवन में विभिन्न अवसरों पर बहुजनों, पिछड़ों और अल्पसंख्यकों की प्रगतिशील और परिवर्तनकारी एकता का सपना देखते रहे थे।[20]

मजबूर और कमजोर सरकार दादागिरी नही कर सकती

राजनीति अगर एक खेल है तो कांशीराम इसके सबसे विकट खिलाड़ी थें। 23 फरवरी, 1997 को उन्होंने दिल्ली में हुमायूं रोड वाले अपने घर पर उप्र के बसपा विधायकों से अगले चुनाव की तैयारी करने को कहा और ठीक पांच दिन बाद चेन्नई में लाल कृष्ण आडवाणी के साथ उप्र में सरकार बनाने की बात पक्की कर ली। 19 मार्च को जब मायावती ने पहले छह महीने के लिए भाजपा–बसपा सरकार के मुख्यमंत्री की शपथ ली, तो सबसे ज्यादा शांति कांशी राम के चेहरे पर थी और सबसे ज्यादा उत्साह बसपा कार्यकर्ताओं में था। लखनऊ के केडी सिंह बाबू स्टेडियम में हुए शपथ ग्रहण समारोह में बैठे भाजपा नेताओं के चेहरे गंभीर सोच में डूबे हुए थे कि पता नहीं कांशी राम छह महीने बाद भाजपा का मुख्य मंत्री बनने देंगे या नहीं और पता नहीं छह महीने खत्म होने से पहले वे कौन सा दांव मारेंगे!' 1995 में साढ़े चार महीनों के लिए मायावती को मुख्य मंत्री बनवा कर भाजपा खमियाजा भुगत चुकी थी। उसी मुख्यमंत्रित्व की बदौलत कांशी राम ने अगले लोक सभा चुनाव में ही अपने वोट दस से बढ़ा कर 20 फीसदी से ज्यादा कर लिए थे और भाजपा का प्रतिशत पहले जितना ही रह गया था। इस बार भाजपा नेताओं को उम्मीद थी कि वे कांशी राम को सारे देश के पैमाने पर तालमेल करने के लिए मना लेंगे लेकिन कांशी राम ने एक–एक करके उनकी उम्मीदों पर तुषारापात कर दिया –

"मैं किसी गठजोड़ के लिए कोई गारंटी नहीं दे सकता। बसपा अपने मिशन को पूरा करने के लिए अवसरों की तलाश में है। भाजपा मनुवादी पार्टी है और बसपा मानववादी। फिलहाल दोनों के बीच बड़े पैमाने पर कोई गठजोड़ संभव नहीं है।"

भाजपा को जब भी लगता है कि वह कांशी राम के जरिये बहुजन वोट प्राप्त कर लेगी, वे उस गलतफहमी को दूर करने में जरा भी देर नहीं लगाते। अटल बिहारी वाजपेयी जब कांशी राम को राष्ट्रपति बनाने की योजना ले कर उनके पास गए तो उन्होंने उस प्रस्ताव को फौरन ठुकरा दिया क्योंकि वे राष्ट्रपति नहीं सिर्फ प्रधान मंत्री बनना चाहते थे।

अप्रैल, 1996 में रोपड़ (पंजाब) के रामलीला मैदान में हुई एक जनसभा में अकाली नेता और शिरोमणि गुरद्वारा कमेटी के अध्यक्ष गुरूचरणसिंह तोहड़ा ने उन्हें देश का अगला प्रधान मंत्री करार दिया था। इस प्रकार कांशी राम के रूप कोई बहुजन नेता स्वयं को प्रधान मंत्री पद के लिए तैयार करता हुआ दिखाई रहा था।[21]

1993 के बाद कांशीराम ने कई गठजोड़ बदले । कई प्रच्छन्न समझौते करने के बाद उन्होंने पहला घोषित समझौता भाजपा के खिलाफ सपा से किया और फिर सपा के खिलाफ भाजपा से। पंजाब में अकाली दल (बादल) के साथ गठजोड़ में गए, फिर उप्र में कांग्रेस से मिलकर लड़े, पंजाब में अकाली दल (मान) से तालमेल किया और विधान सभा चुनाव के बाद कांग्रेस को ठेंगा दिखाकर भाजपा से मिल गए। लोगों ने उन्हें अवसरवादी और अविश्वसनीय कहा पर वे कहते रहे, "हम लोग यथास्थितिवादी नहीं हैं। हम बदलते रहते हैं।[48] जाहिर है कांशी राम ने अवसरवाद को ही एक सिद्धांत में बदल दिया है और व्यावहारिक राजनीति ही उनकी सबसे बड़ी नैतिकता थी। वे भाजपा के राजनीतिक इष्टदेव राम की उस समय भी भर्त्सना करते थे। जब भाजपा के समर्थन से ही मायावती उप्र की गद्दी पर बैठी होतीं थीं। वे राजनीति के ज्वार – भाटे में बेखौफ डूबते–उतराते थें। एक क्षेत्र में वे पिछले चुनाव में जीती हुई सीटें हार जाते हैं पर दूसरे इलाके में वे अपना आधार विस्तृत कर लेते थें। एक तरफ भाजपा से गठजोड़ उनके बहुजन समाज से मुसलमानों को फिरंट कर देता था। लेकिन दूसरी तरफ वे आदिवासियों और बहुजनों का मोर्चा बनाने की तरफ कामयाब कदम रख रहे होते थें।[49] उनकी राजनीति ऊपर से देखने में अल्पकालीन लगती है पर उस पर गहरी नजर डालते ही उसके दीर्घकालीन सूत्र दिख जाते थें।

इस कामयाबी के लिए कांशी राम ने किसी स्थापित राजनीतिक मूल्य और किसी भी विचारधारात्मक नैतिकता की परवाह नहीं की। उन्होंने एकदम नए तरह की राजनीति की। देश भर के पैमाने पर हर तरह की राजनीतिक ताकतों के साथ समझौते किए और तोड़े। सरकार बनाई, तोड़ी, दूसरों की सरकार बनाने में मदद की और ऐसी परिस्थिति भी बनाई जिसमें किसी की सरकार नहीं बन सकी। **इस तरह से वे राजनीतिक स्थिरता के नहीं बल्कि अस्थिरता के चैंपियन बन कर उभरे।** उन्होंने इसे छिपाया भी नहीं–

"मुझे मजबूत नहीं, मजबूर सरकार चाहिए।.....हमें उस वक्त तक कमजोर केंद्र की जरूरत है जब तक हम कमजोर हैं।[22].....हमारी पार्टी शासक दल तो नहीं बन सकती पर हमारे पास इतने वोट जरूर हैं कि हम किसी भी पार्टी को बहुमत मिलने से रोक सकते हैं।..... अगर सरकार कमजोर होगी तो कमजोर वर्ग मजबूत होगा वरना उल्टा होगा। इसलिए जब तक कमजोर वर्ग शासन करने लायक नहीं हो जाता, तब तक हम कम से कम दूसरों को तो मजबूत होने से तो रोक ही सकते हैं"[23]

कांशीराम की राजनीतिक जिंदगी में पंजाब और उत्तर प्रदेश का जोड़ शुरू से ही महत्वपूर्ण भूमिका निभाता रहा थां। 1984 में बसपा के गठन से पहले और उत्तर प्रदेश को अपनी राजनीति का केंद्र बनाने से पहले कांशी राम ने पंजाब की धरती पर ही साबित किया था कि वे बहुजन वोटों के थोड़े से प्रतिशत को कांग्रेस से हटा कर न केवल उसे सत्ता से वंचित कर सकते हैं बल्कि बहुजनों को एक नए किस्म की चुनावी रणनीति का औजार भी बना सकते हैं।[53] उस समय तक बहुजन कांग्रेस को केवल जिताने और इस राम ने उन्हें हराने और स्थापित राजनीतिक गणित बिगाड़ने के लिए वोट करना सिखाया। कांशीराम बहुजनों की इस नई मतदान प्रवृत्ति को उत्तर प्रदेश के मैदान में ब्राह्मणवाद की गर्दन दबोचने की सीमा तक ले गए। इसके बाद, पंजाब उनकी राजनीतिक योजना में दोयम दर्जे पर चला गया क्योंकि पंजाब में जातिवाद और ब्राह्मणवाद की अभिव्यक्तियां उप्र जितनी स्पष्ट नहीं थीं। कांशी राम ने 1991 में एक साक्षात्कार में कहा था–

"मैं उत्तर प्रदेश पर इसलिए केंद्रित करता हूं क्योंकि वह ब्राह्मणवाद का पालना है। अगर भारत को एक पुरूष के रूप में देखें तो उत्तर प्रदेश उसकी गर्दन है। जब मैं गर्दन दबोचता हूं तो शरीर के दूसरे अंग अपने आप निष्क्रिय हो जाते है और उन पर हमारा नियंत्रण कायम हो जाता है।..... .....हम भारत सरकार पर नियंत्रण से कम कुछ नहीं चाहते।"[24]

उनका विचार थां कि –

"एक राष्ट्र के रूप में हम कमजोर हैं, सामाजिक और आर्थिक रूप से भी हम कमजोर हैं और इसलिए हम राजनीतिक रूप से कमजोर हैं।.....मेरा मुख्य मकसद सामाजिक रूपांतर और आर्थिक मुक्ति है। इसके लिए हमें शुरूआती तौर पर राजनीतिक प्रभाव चाहिए और अंतिम तौर पर राजनीतिक सत्ता चाहिए। डॉ. आंबेडकर नें कहा था कि राज सत्ता वह चाबियों की चाबी हैं जिससे हर ताला खुल जाता हैं।"[25]

जिस तरह की राजनीति कांशी राम करते थें उसके लिए किसी तरह के घोषणा पत्र या कार्यक्रम की जरूरत नहीं थी। असल में कांशीराम की रूचि पार्टी बनाने में उतनी थी ही नहीं जितनी पार्टीयां नष्ट करने में थी। वे पार्टीयां नष्ट करने के लिए दलबदल जैसे हथकंडों में विश्वास नहीं करते। उनका मानना था कि वे स्थापित दलों से समझौता करके गिरावट की राह पर धकेल देते है। वे ऐसे मौके और ऐसी जगह गठजोड़ तोड़ते थे जिससे उनकी सहयोगी पार्टी को जोरदार झटका लगता था। और वे अपनी इस मंशा को छिपाते भी नहीं थे। कांशी राम की निर्ममता इस मामले में बेमिसाल थी –

"मैं पिछले कई सालों से कांग्रेस को धीरे–धीरे नष्ट करने की कोशिश कर रहा था। लेकिन, पिछले कुछ सालों से मुझे लगा कि इस मामले में मैं नरसिंह राव का मुकाबला नहीं कर सकता..... मैंने हथियार डाल दिए। उन्हें कांग्रेस से निपटने दीजिए, हम अब भाजपा पर ध्यान देंगे।"

इस गठजोड़ को अंजाम देने के लिए जिस व्यापकता की जरूरत हैं उसे हासिल करने के लिए कांशी राम अछूतों को टिकट देने के बजाय गैरअछूतों और जरूरत पड़ने पर सवर्णो को भी टिकट देने से परहेज नहीं करते थे।

"हमारा लक्ष्य बहुजन समाज बनाने का हैं और बहुजन समाज बनने के बाद बहुजन समाज पार्टी बनाना हैं। बहुजन समाज बना माना जाएगा जब 85 में से कम से कम 50 लोग हो जाएं। 50 भी नहीं हो पाते 40, नहीं तो फिर 35 हर कीमत पर होने चाहिए। सही माने में बहुजन समाज बना तब समझा जाएगा जब कम से कम 35 लोग हमारे साथ जुड़ जाएंगे। तब इस देश में एकजुट 35 लोगों की सरकार बनेगी और किसी की नहीं। अभी आपने देखा कि त्रिकोणी संघर्ष में तमिलनाडु में डीएमके ने 32 प्रतिशत वोट ले कर दो तिहाई बहुमत पाकर सरकार बना ली।"

कांशीराम ने अपनी बहुजन विचारधारा फुले, शाहू और आंबेडकर के विचारों से निकाली हैं। केवल बहुजनों की दम पर राजनीतिक करने संबंधी आंबेडकर के प्रयोगों की नाकामी और रिपब्लिकन पार्टी के खात्मे के उदाहरण उनके सामने हैं। इसलिए कांशी राम के राजनीति प्रयासों में कई बार आंबेडकर से अलग हट कर बनाई गई कार्यनीतियां झलकती हैं। इससे बहुजन बुद्धिजीवी भड़क उठते हैं और इलजाम लगाते हैं कि या तो कांशी राम ने आंबेडकर को पढ़ा हीं है, या पढ़ कर समझा नहीं हैं। बहुजन आंदोलन के अध्येता डा. गोपाल गुरू ने कांशी राम पर आरोप लगाया है कि उन्होंने एक सामाजिकता आंदोलन को पूरी तरह रोजमर्रा के राजनीतिक जोड़–तोड़ में सीमित कर दिया हैं। लेकिन कांशी राम की इसी कमी को **ब्रिटिश अध्येता एंड्रू वैट उनकी खूबी मानते हैं**–

बसपा पर हमें ध्यान इसलिए ध्यान देना चाहिए क्योंकि वह बहुजनो की राजनीतिक मुक्ति के लिए जरूरी हैं। बसपा भारतीय राजनीति की मौजूदा हालत को देखने के लिए एक उपयोगी माध्यम भी हैं। बसपा के उधार को कई तरीके से व्याख्यायित किया जा सकता हैं। इसे भारत में बहुलवादी राजनीति के अच्छे स्वास्थ के प्रमाण के रूप में भी देखा जा सकता हैं।[26]

योगेंद्र यादव भारतीय राजनीति के इस नए चेहरे में बसपा जैसी पार्टियां का स्थान इस तरह रेखांकित करते हैं–

बसपा के उदय को कांग्रेस की घटती ताकत का पर्याय मानने का तर्क कांशी राम की परिघटना का केवल एक पहलू थां। इसका दूसरा पहलू कांशी राम और बसपा की कोशिशों के कारण कांग्रेस के घटते प्रभाव को देखने के रूप में भी हो सकता है। अगर उत्तर भारत में बहुजनो को उनके वोट का महत्व समझाने के अभियान में कांशी रामने जुटे होते तो आज बहुजन कांग्रेस से अलग हो कर वोट करने की स्थिति में न आते। खास तौर से उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश और पंजाब में कांशी राम ने एकाधिकबार बहुजनों को कांग्रेस का वैकल्पिक प्लेटफार्म प्रदान किया था। बिहार में बसपा ताकतवर नहीं है इसलिए वहां बहुजनों को उसी तरह जनता दल के पक्ष में वोट करना पड़ता है जिस वे कभी कांग्रेस के पक्ष में वोट करते थे। दूसरे, इस व्याख्या में बसपा को उन पार्टियों के साथ रख दिया गया जो 'जितनी जल्दी पैदा हुई हैं उतनी ही जल्दी खत्म भी हो सकती है'। बसपा के भविष्य के बारे में यह आकलन बहुजन बुद्धिजीवियों द्वारा अक्सर व्यक्त की जाने वाली इस निराशा से मिलता–जुलता हैं। यदि कांशीराम ने अब भी बसपा में संगठनात्मक शक्ति पैदा नहीं की, पार्टी की मशीनरी नहीं बनाई और पेशेवर तथा विचारहीन लोगों के समूह की जगह मिशनरी और विचारशील लोगों

का समूह अपने साथ नहीं लिया तो मुझे यही कहना पड़ेगा, जो ड़ा आंबेडकर ने रानाडे की लिबरल पार्टी के लिए कहा था कि 'यह दल मृत्यु को प्राप्त हो जाए।'[27]

कंवल भारती के इन कठोर उद्‌गारों से स्पष्ट है कि कांशी राम के आलोचक बसपा जैसे सामाजिक कम राजनीतिक आंदोलन को एक कार्यकर्ता आधारित, अनुशासित और वैचारिक धरातल पर खड़ी पार्टी के रूप में देखने के इच्छुक हैं। वे बसपा में आंतरिक लोकतंत्र भी चाहते हैं। लेकिन, **एंड्रू वैट** की दृष्टी बसपा के मौजूदा स्वरूप के प्रति कुछ अधिक हमदर्द है –

बसपा के पूरे चुनावी अभियान में सवर्णो तथा सवर्णो के प्रभुत्व के खिलाफ बहुत कम नारेबाजी की गई। इसके अलावा, पार्टी ने अपनी 297 सीटों का कम से कम पांचवां हिस्सा यानी 52 टिकट सवर्ण उम्मीदवारों को दिए।[28]

ब्राह्मण, बनिया, ठाकुर छोड–बाकी सब डीएस–फोर का नारा वही कांशी राम अगर 52 सवर्णो को टिकट देने लगें तो समझना चाहिए कि उनकी रणनीति में खासा लचीलापन है और वे हमेशा 'अपने' के विरूद्ध 'दूसरे' को खड़ा करने की राजनीति करने के लिए अभिशप्त नहीं थे। हो सकता है कि वे जनता दल और सपा जैसे मध्यमार्गी दलों के विनाशक किसी खुफिया योजना पर काम करने का दावा करते दिखें।

साधारण बुश शर्ट, पेंट और चप्पल पहनने वाले कांशी राम की छवि आम भारतीय नेता से बिलकुल अलग थीं। वे समाजवादियों अथवा कम्युनिस्टों की भांति जोरदार उतार–चढ़ाव वाला भाषण नहीं देते थे। उनके स्वर का स्तर एक सा और नरम रहता था और सीधी–सपाट बातचीत उन्हें पसंद थी। जो बात उन्हें फायदेमंद लगती थी, उसे दोहराते हुए वे बोर नहीं होते। भोजन और रहन–सहन संबंधी उनकी रूचियां कतई अनुल्लेखनीय थी। वे अपनी पार्टी के सवौच्च तथा आदरणीय नेता थें। किसी जमाने में बेहद साधनहीनता के बीच राजनीति करने वाले कांशी राम अपनी वातानुकूलित कार में अकेले चलते थें। वे एक जगह टिक कर नहीं बैठते लगातार दौरा करते रहते थे। पार्टी में उनके अनुयायी उन्हें 'साहब' के नाम से पुकारते अवसरवादी, कुटिल, अविश्वनीय, सिद्धांतहीन अथवा ऐसी ही किसी आलोचना का उन पर कोई असर नहीं पड़ता था मुलायम सिंह सरकार गिराने के लिए हुई बातचीत के दौरान कई भाजपा नेताओं को

मा. कांशीराम ने अपने संघटनात्मक कौशलसे बहुजन समाज की गुलामी करने की आदतही बदल डाली. यह उनके नेकी तथा निरंतर प्रयासोंका परिणाम था।

संदर्भ –

1. बहुजन संगठक, अक्तूबर, 1988
2. द ऑप्रेस्ड इंडियन, अप्रैल 1979
3 उपरोक्त, अक्तुबर 1980
4. सेमिनार, 388, दिसंबर 1991
5. करंट, 28 अक्तूबर 1989.
6 फ्री प्रेस जर्नल, 20 सितंबर 1989.
7. करंट, 11 जन 1988.
8. टेलीग्रफ, 16 मार्च, 1991.
9 संडे मेल, 20 अगस्त 1990.
10 टेलीग्रफ, 23 मार्च, 1991.
11. हिंदुस्तान टाइम्स, 19 जनवरी 1991.
12 संडे आब्जर्वर, 20 अगस्त, 1990.
13. करंट, 19 जनवरी 1991.
14. करंट, 19 जनवरी 1991.
15 टेलीग्राफ, तीन मार्च, 1989.
16 इंडियन एक्सप्रेस, 30 मार्च 1990.
17. करंट, 19 जनवरी 1991.
18. संडे मेल, 26 अगस्त, 1990.

19 करंट, 3 जून 1989.
20. द ऑप्रेस्ड इंडियन, दिसम्बर 1982
21.बहुजन संगठन, सितंबर 1991
22 उपरोक्त, अक्तुबर 1991
23.अभय कुमार दुबे, कांशीराम, राजकमल प्रकाशन, 1997, पृ. 80
24.उपरोक्त पृ. 82
25.इंडियन एक्सप्रेस, 26 फरवरी 1992
26.गेल आम्वेट, दलित विजंस, अरिएंट, लागमेन, दिल्ली, 1996, पृ. 44–45
27.ए. आर. अकेला, कांशीराम के साक्षात्कार, मानक पब्लिशर्स, दिल्ली, 2007, पृ. 145
28.बहुजन नायक, मा. कांशीराम साहब के भाषण टी.बी.एस.आय. नागपूर, खंड–1, 2005, पृ. 247.

LBP PUBLICATION